संस्करण - 3 अंक - 1 जनवरी 2023

प्रज्ञाम्बु

cGanga
गंगा नदी घाटी प्रबंधन एवं अध्ययन केंद्र

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर द्वारा संचालित गंगा नदी घाटी प्रबंधन एवं अध्ययन केंद्र (cGanga) की इस त्रैमासिक पत्रिका का उद्देश्य जल और नदी पुनरुद्धार एवं संरक्षण के प्रबंधन से संबंधित विभिन्न विषयों पर देश-विदेश से उपलब्ध पारंपरिक ज्ञान एवं विज्ञान के समन्वय पर आधारित जानकारी संबंधित संस्थाओं एवं नागरिकों तक पहुचाना है।

ताकि बहती रहें नदियां अनंत तक...

प्रज्ञाम्बु के पिछले अंक में हमने त्योहारों से जुड़ी विविध परंपराओं और उनके पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत किया था। प्रज्ञाम्बु का यह अंक भी एक ऐसे ही संवेदनशील विषय पर केंद्रित है जिसका जुड़ाव हमारी भावना, विश्वास, परंपरा के साथ पर्यावरण और नदियों से है। प्रज्ञाम्बु के इस अंक में हम बात करेंगे मृत्यु के उपरांत होने वाले अंतिम संस्कार के बारे में। अंतिम संस्कार करने के तरीके विभिन्न संप्रदाय और वर्ग में अलग–अलग हैं। हिंदू, जैन, सिख और बौद्ध धर्म में मृत्यु के बाद मृत देह को अग्नि को समर्पित किया जाता है, इस प्रक्रिया को अंतिम संस्कार कहा जाता है।

अंतिम संस्कार के लिए लकडियों की आवश्यकता होती है और लकडियों की आपूर्ति वृक्षों और वनों से होती है। हमारे देश में जनसंख्या का बढ़ना और वनों का घटना जारी है। ऐसे में कई बार अंतिम संस्कार की पारंपरिक विधि सवालों के घेरे में आ जाती है। नदीतंत्र में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है लिहाजा वनों के सिकुडने का प्रभाव नदियों पर भी होता है।

नदियां जीवनदायिनी होती हैं, इन जीवनदायिनी नदियों से मनुष्य का लेन–देन जीवनभर जारी है यहां तक कि मृत्यु के बाद भी मानव देह और नदी का संबंध कुछ समय तक कायम रहता है। यही कारण है कि प्रज्ञाम्बु का यह अंक मरणोपरांत की गतिविधियों पर केंद्रित है। आइए जानते हैं कि अंतिम संस्कार की विभिन्न पद्धतियों का हमारे पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है? क्या इनमें से कुछ पद्धतियां इको–फ्रेंडली और शेष पर्यावरण के लिए हानिकारक हैं? क्या आधुनिक तकनीकें मसलन विद्युत शवदाह पूरी तरह से पर्यावरण हितैषी हैं? आइए विज्ञान, तथ्य और तर्कों की कसौटी पर कसते हुए इन सवालों के जवाब तलाश करते हैं।

भारत समेत दुनियाभर में अधिकांश लोग मृत देह का अंतिम संस्कार, देह के दहन द्वारा करते हैं। एशिया के कई देशों में दाहसंस्कार धार्मिक परंपराओं का अभिन्न अंग है। पश्चिमी देशों ने दाह–संस्कार के विकल्प को आधुनिक युग में अपनाया है क्योंकि वहां की परंपराओं के अनुरूप मृत्यु के बाद देह को दफनाना चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में देह को दफनाने में कई किस्म की प्रशासनिक, पर्यावरणीय और आर्थिक समस्याओं को देखते हुए पश्चिमी देशों में जनसंख्या का एक बड़ा वर्ग दाहसंस्कार को अपना रहा है। इनमें अमेरिका, ब्रिटेन, चीन, दक्षिण कोरिया, जापान, नीदरलैंड, फ्रांस जैसे देशों में विभिन्न धर्मों के अनुयायी मृत देह के दफन के स्थान पर दहन (विद्युत शवदाह) का विकल्प चुन रहे हैं। अमेरिका में लगभग 60 प्रतिशत लोग मृत देह को दफन करने के स्थान पर दाहसंस्कार का विकल्प चुन रहे हैं और वर्ष 2035 तक यह संख्या 80 प्रतिशत तक पहुंच सकती है। ज्यादातर पश्चिमी देशों में लोग जीवित अवस्था में ही यह निर्णय ले लेते हैं कि मृत्यु के बाद उनका अंतिम संस्कार दहन के जरिए करना होगा या उन्हें भूमि में दफन करना होगा अथवा किसी अन्य उपलब्ध विकल्प को स्वीकारते हुए उनके शरीर को अंतिम विदाई दी जाएगी।

यदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में बात की जाए तो भारत में बहुसंख्यक हिंदू समुदाय समेत सिख, जैन और बौद्ध धर्म के अनुयायी मृत देह का दाहसंस्कार करते हैं। अंतिम संस्कार का यह तरीका सदियों पुराना है और भारतीय जनमानस की भावनाओं में गहराई से बसा है। अंतिम संस्कार की रीतियों और विधियों का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है और वैदिक काल से ही यह परंपरा चली आ रही है। समूचे भारतवर्ष में अंतिम संस्कार से संबंधित विधियों में एकरूपता देखने को मिलती है।

बीते पांच दशकों से भारत में दाह–संस्कार या अंतिम संस्कार अलग–अलग कारणों से चर्चा का विषय बनता रहा है। इस परंपरा में परिवर्तन के सुझाव रखे गए हैं, कुछ नए विकल्प भी जनसामान्य को मुहैया करवाये गए हैं किंतु आज भी बहुसंख्य जन अपने किसी निकट संबंधी को अंतिम विदाई अंतिम संस्कार के द्वारा ही देना चाहते हैं। परंपरागत दाह–संस्कार में मुक्तिधाम (जिसे श्मशान घाट या मोक्ष धाम के नाम से भी जाना जाता है) में लकड़ी और गोबर के उपलों से बनी चिता पर परिजनों के बीच मृत देह को मुखाग्नि देकर अग्नि को समर्पित किया जाता है और इस तरह से मनुष्य की देह को अंतिम विदाई दी जाती है। भारत में दाह संस्कार की यह परंपरा सदियों से अपनाई जा रही है।

अंतिम संस्कार के इस तरीके के चर्चा में बने रहने के दो कारण हैं – पहला अंतिम संस्कार के दौरान उठने वाला धुआँ जिसे वायु प्रदूषण के लिए जिम्मेदार माना जाता है।

दूसरा अंतिम संस्कार हेतु लकड़ियों की आपूर्ति करने के लिए वृक्षों को काटना। इन दो कारणों को देखते हुए कई बार पर्यावरणविद् इस तरीके में बदलाव की पैरवी करते हैं। इसी परंपरागत अंतिम संस्कार से जुड़ा एक अन्य पहलू है, इसकी लागत। लकड़ियों का इस्तेमाल होने की वजह से इसकी लागत भी अधिक आती है जिसके चलते कई बार निर्धन वर्ग के लोगों को अन्य लोगों से मदद लेकर अंतिम संस्कार करने की नौबत आ जाती है। दूसरी ओर अति निर्धन वर्ग के कुछ लोग अंतिम संस्कार ना कर पाने की दशा में देह को पवित्र नदियों में विसर्जित कर देते हैं।

दुनिया के अन्य देशों के संदर्भ में बात की जाए तो कई अन्य धर्म और संस्कृतियों में मृत्यु के बाद देह को चिरकालीन विश्राम देने के लिए जमीन में दफनाने का रिवाज है। शरीर को अंतिम विदाई देने का यह रिवाज भी पूर्णतया पर्यावरण हितैषी नहीं है। ऑस्ट्रेलिया से प्रकाशित सिडनी मॉर्निंग हेरॉल्ड में प्रकाशित एक शोध रिपोर्ट के अनुसार देह को दफनाने से पर्यावरण पर देह के दहन से 10 प्रतिशत अधिक दुष्प्रभाव होते हैं। भूमि में देह को दफनाते समय देह के इर्द–गिर्द कुछ रसायन भी डाले जाते हैं, जिससे शरीर का अपघटन

शीघ्रता से हो सके। यह रसायन भू–जल और भूमि के भीतर स्थित जलमार्गों को प्रभावित करते हैं। देह के अपघटन की प्रक्रिया के दौरान मीथेन गैस का उत्सर्जन होता है, जिसका पर्यावरण पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा यदि इंसान की मृत्यु किसी गंभीर संक्रमण से हुई है, उस दशा में संक्रमित देह को दफनाना सामुदायिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से उचित नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि कई देशों में वैश्विक महामारी के दौरान कोरोना संक्रमण के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए लोगों के परिजनों को समझाया गया कि वे देह को दफन करने के स्थान पर दाहसंस्कार करें। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि दहन के जरिए शरीर का अपघटन शीघ्रता से होता है और मृत देह से किसी किस्म का संक्रमण फैलने की संभावना नहीं होती।

भारत के संदर्भ में बात करें तो अंतिम संस्कार और दाह संस्कार के लिए बीते वर्षों में कई बार विचार– विमर्श हुआ और 1960 में पहला विद्युत शवदाह गृह कोलकाता में प्रारंभ किया गया। इसके बाद कई महानगरों में लोगों को विद्युत द्वारा शवदाह की सुविधा मुहैया करवाई गई। कोलकाता, जहां पूर्व से ही नवजागरणवाद और सुधारवादी विचारकों का प्रभाव रहा है, वहां लोगों ने धीरे–धीरे इस सुविधा का उपयोग करना प्रारंभ किया। इसी तरह की स्थिति मुंबई में भी निर्मित हुई जहां धीरे–धीरे लोगों ने इस पद्धति को अपनाया, बैंगलोर और दिल्ली में लोगों ने इसे स्वीकारा। इसके अलावा भारत में जहां भी विद्युत शवदाहगृह बनाए गए, वहां इसे जन स्वीकृति नहीं मिली। ऐसे में इन केंद्रों के संचालन की लागत जिला प्रशासन को महंगी महसूस होने लगी और कई शहरों में यह सुविधाएं बंद होने लगीं। कुछ स्थानों पर संचालन संबंधी परेशानियों की वजह से कुछ शहरों में लोगों द्वारा उपयोग ना करने की वजह से तो कहीं प्रशासन पर अधिक लागत का दबाव पड़ने की वजह से ये केंद्र बंद होने लगे।

भारत में वैश्विक महामारी की पहली और दूसरी लहर के दौरान एक बार फिर विद्युत द्वारा शवदाह की प्रक्रिया चर्चा में आई और इस बार सामाजिक दूरी और शव को घर पर या मर्चुरी में ना रख पाने की विवशता और अंतिम संस्कार में परिजनों के एकत्रित ना होने की वजह से लोगों ने इस विकल्प को अपनाया। आज जब महामारी खत्म हो चुकी है तो महानगरों को छोड़कर अन्य शहरों में विद्युत शवदाहगृह एक बार फिर खाली हैं और लोग पारंपरिक विधि से अंतिम संस्कार करने को प्राथमिकता दे रहे हैं।

क्यों नहीं मिली जनस्वीकृति?

विद्युत शवदाह को बड़े पैमाने पर जनस्वीकृति ना मिलने के पीछे एक बड़ा कारण हैं, सदियों से चली आ रही मान्यता और अंतिम संस्कार के दौरान निभाई जाने वाली वे रस्में, जिन्हें निभा कर सुनिश्चित किया जाता है कि आत्मा शरीर त्याग कर स्वर्ग की ओर आगे बढ़ गई है। पारंपरिक दाह संस्कार में मृतक को चिता पर लिटाने के बाद उसे पुत्र, पौत्र या अन्य निकट संबंधी के द्वारा मुखाग्नि दी जाती है। विद्युत शवदाह में इस रस्म को निभाना संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त भी अंतिम संस्कार की कुछ रीतियां विद्युत शवदाह के दौरान निभाना संभव नहीं होता जैसेः

- परिजन भी चिता में आहुतियां देते हैं, जो कि विद्युत शवदाह में संभव नहीं है।
- मुखाग्नि देने के कुछ देर बाद कपाल क्रिया की जाती है, ऐसा माना जाता है कि कपाल क्रिया के बाद ही आत्मा देह को त्याग कर आगे बढ़ती है, विद्युत शवदाह में यह भी नहीं किया जा सकता। ऐसी मान्यता है कि कपाल क्रिया के बाद ही पूर्व जन्म की स्मृतियां मिटती हैं और आत्मा नवजीवन की ओर प्रस्थान करती है।
- पारंपरिक चिता में लकड़ियों के साथ उपले, कपूर, घी और हवन सामग्री का इस्तेमाल किया जाता है, जिसकी वजह से दाह–संस्कार करने के दौरान दुर्गंध नहीं आती। दूसरी ओर विद्युत शवदाह की प्रक्रिया में किसी किस्म की हवन सामग्री का इस्तेमाल नहीं होने से इस प्रक्रिया में गंध आती है, जिससे मृतक के परिजन असहज महसूस करते हैं और आस–पास की रहवासी बस्तियों के लोग भी गंध से परेशान होते हैं।

अन्य चुनौतियां

विद्युत से शवदाह करने में और भी चुनौतियां हैं, मसलन यदि मृतक के शरीर में पेसमेकर (हृदय में फिट होने वाली छोटी सी मशीन) लगी हो तो शवदाह से पहले उसे निकालना पड़ता है क्योंकि पेस मेकर के जलने से समूची फर्नेस में खराबी आ सकती है। अमेरिका और अन्य यूरोपीय देश जनसांख्यिकी आंकड़ों के मामले में भारत से बहुत आगे हैं। वहां मृतक के बारे में सभी जानकारियां शीघ्र उपलब्ध हो जाती हैं, और दूसरी ओर चिकित्स्कीय सुविधाओं के मामले में भी कामकाज की गति पश्चिमी देशों में तेज है। लिहाजा मृतक के शरीर से मशीनी उपकरणों को निकालना आसान है। यदि इसकी तुलना भारत से की जाए तो मृत देह से मशीन को अलग करने की प्रक्रिया मंद और जटिल साबित हो सकती है, साथ ही मृत देह की शल्यक्रिया के लिए परिजनों की स्वीकृति मिलना भी कठिन है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में चुनौतियां और पर्यावरण हित

विद्युत शवदाह के वृहद स्तर पर संचालन में भारतीय परिप्रेक्ष्य में कई चुनौतियां हैं, जैसेः

सतत विद्युत आपूर्ति

विद्युत शवदाह संयंत्र को सतत् विद्युत आपूर्ति की आवश्यकता होगी। आज भी भारत में कई गांव और छोटे शहर ऐसे हैं जहां बिजली की कटौती होती है, ऐसे में 24 घंटे लगातार विद्युत आपूर्ति कैसे होगी?

किसी भी तरह की तकनीकी खामी आने की दशा में यदि विद्युत आपूर्ति रूक जाए तो देह के दहन को अधूरा नहीं छोड़ा जा सकता। लिहाजा वर्तमान में संचालित हो रहे ज्यादातर विद्युत शवदाह गृहों में डीजलचलित जनरेटर की सुविधा दी गई है। डीजल से जनरेटर चलाकर पैदा हो रही बिजली से शवों के दहन को पर्यावरण हितैषी तो करार नहीं दिया जा सकता।

नीतिगत निर्णय और योजना

मोक्षधाम या श्मशान घाट हर गांव, कस्बे और शहर में होते हैं क्योंकि मृत्यु हमारे सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग है। इतनी बड़ी तादाद में विद्युत शवदाह केंद्र बनाने में लंबा समय और संसाधन लगेंगे। यह समूचा निर्माण कार्य पर्यावरण पर क्या प्रभाव डालेगा? इस सुविधा केंद्र को

क्या पूरी तरह पर्यावरण हितैषी है विद्युत शवदाह

उपरोक्त कारण बताते हैं कि क्यों विद्युत शवदाह भारत में लोकप्रिय नहीं हो सका। लेकिन हमें यहां इस बात की भी पड़ताल करनी होगी कि क्या विद्युत शवदाह पूरी तरह पर्यावरण हितैषी है? विद्युत शवदाह में फर्नेस को अंतिम संस्कार की प्रक्रिया प्रारंभ करने से पहले ही गर्म (प्री हीट) रखना होता है। शवदाह के दौरान (300 kwh) 300 किलोवाट प्रतिघंटा की दर से कम से कम 75 मिनट तक सतत विद्युत ऊर्जा प्रदान करनी होती है तब जाकर शरीर का पूर्ण दहन हो पाता है। ऊर्जा की यह मात्रा भारत के संदर्भ में कम नहीं कही जा सकती।

विद्युत शवदाह में शरीर का दहन 1200 डिग्री फेरेनहाईट से अधिक तापमान पर किया जाता है। अमेरिका में इस विधि से किया जाने वाला अंतिम संस्कार अत्यंत लोकप्रिय है और वहां क्रिमेशन फर्नेस से होने वाले प्रदूषण को कम करने के लिए कई तरह की आधुनिक तकनीकों और फिल्टर्स को अपनाया गया है, इसके बावजूद दहन से पैदा होने वाली कार्बनडाई ऑक्साईड को उपचारित करना असंभव ही रहा। एक शरीर के विद्युत द्वारा होने वाले दहन से 534.6 पौंड कार्बनडाई ऑक्साईड पर्यावरण में पहुंच जाती है। फिलहाल हम इसकी तुलना पारंपरिक चिता पर होने वाले दहन से नहीं कर सकते क्योंकि इसके बारे में आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

बनाने के लिए भूमि का अधिग्रहण कैसे होगा? उस भूमि पर लगे वृक्षों, घास, झाडियों का क्या होगा? ऐसे कई सवाल हैं जिनके जवाब हमारे शहरों के मास्टर प्लान में या नगरीय निकायों के पास नहीं हैं। यदि भारत में वृहद स्तर पर विद्युत शवदाह के विकल्प को अपनाना है तो केंद्र और राज्य सरकारों को एक नीति बनानी पड़ेगी और योजनाबद्ध ढंग से इन सुविधाकेंद्रों का विकास करना होगा, यह एक लंबी प्रक्रिया है।

विद्युत ऊर्जा का उत्पादन और पर्यावरण

सबसे बड़ा सवाल है कि इतने सारे शवदाह गृहों के संचालन के लिए जिस मात्रा में विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता होगी, उसकी आपूर्ति किस तरह की जाएगी? हमारे देश में जल विद्युत ऊर्जा जनसंख्या की विद्युत मांग के बड़े हिस्से की आपूर्ति करती है। नदियों को बांधकर जो बिजली पैदा होती है, उस प्रक्रिया में पर्यावरण संबंधी कई चुनौतियां हैं। कई बाँध परियोजना से जुड़े विवाद और सवाल आज भी कायम हैं। बड़े बाँध बनाने से होने वाला विस्थापन अपने आप में बड़ी समस्या है। कोयले को जलाकर बिजली पैदा की जाए और फिर उस बिजली से मृत देह का दहन किया जाए तो इस तरह के दहन को पर्यावरण हितैषी कहना कितना उचित होगा, यह भी एक चुनौती है।

मध्यममार्ग से मिलेगा समाधान

अंतिम संस्कार एक भावनात्मक सामाजिक पहलू है जिसमें कोई भी परिवर्तन जनसामान्य पर थोपा नहीं जा सकता। इस मामले में हमें ऐसा मध्यममार्ग तलाशना होगा जो पर्यावरण हितैषी भी हो और जनसामान्य की भावनाओं का भी सम्मान करते हुए, मृत मानवीय देह को गरिमापूर्ण अंतिम विदाई देता हो। ऐसे ही कुछ विकल्प का वर्णन इस प्रकार है:

वेदी की चिता– आर्यसमाज के अनुयायी वेदीनुमा चिता पर अंतिम संस्कार करते हैं। मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि जमीन के नीचे तकरीबन चार फुट की गहराई पर बने हवनकुंड और वेदीनुमा चिता पर मनुष्य को अंतिम विदाई दी जाती है। इस विधि में लकड़ियों का बहुत किफायती उपयोग होता है। इसे कई शहरों में आर्यसमाज के अनुयायी वर्षों से अपना रहे हैं।

इम्प्रूव्ड वुड क्रिमेशन– इस पद्धति में एक ऊंचे चबूतरे पर स्थित धातु की छिद्रित चादर पर लकड़ियों की चिता सजाई जाती है और अंतिम संस्कार पूर्ण किया जाता है। इस विधि में दहन के दौरान चिता के नीचे से भी हवा का प्रवेश होता है लिहाजा दहन की प्रक्रिया तेजी से पूरी होती है। इस विधि में लकडियों की खपत पारंपरिक विधि की तुलना में 2 से 3 गुना कम होती है। लिहाजा लागत भी कम आती है और पर्यावरण के लिए भी इसे उचित कहा जा सकता है। इस विधि को गुजरात और उत्तरप्रदेश के मुक्तिधामों में जनता ने स्वीकारा है।

चिता सजेगी पर लक्कड़ी बचेगी

सी–गंगा (सेंटर फॉर गंगा बेसिन मैनेजमेंट एंड स्टडीज) ने एनवायरनमेंट टेक्नोलॉजी वैरिफिकेशन कार्यक्रम के अंतर्गत अंतयेष्टि विधि हेतु एक ऐसी तकनीक से परिचय कराने का प्रयास किया, जो कि सामाजिक परंपराओं को समाहित करते हुए पर्यावरण अनुकूल और धार्मिक दृष्टिकोण से वहनयोग्य है।

इस क्रम में ग्रीन रिवॉल्यूशन फाउंडेशन, नई दिल्ली द्वारा विकसित विभिन्न विधियां अंतिम संस्कार का पर्यावरण हितैषी विकल्प प्रस्तुत करने के लिए प्रतिबद्ध प्रतीत हुई। उक्त संस्था द्वारा जनसामान्य को उपलब्ध करवाए जा रहे विकल्प इस प्रकार हैं:

गोबर से बनी लकड़ियों पर अंतिम संस्कार

इस विकल्प के तहत मशीन की मदद से गाय के गोबर को हूबहू लकड़ी का रूप देकर, उन लकड़ियों से तैयार चिता पर दाहसंस्कार किया जाता है। वैसे भी दाहसंस्कार की प्रक्रिया में गोबर के कंडों का इस्तेमाल होता है। इस विधि से अंतिम संस्कार की सभी रीतियां पूर्ण की जा सकती हैं, जो विद्युत शवदाह में संभव नहीं है। प्रश्न आता है कि लकड़ियों के निर्माण के लिए कच्चा माल यानी कि गोबर की आपूर्ति कैसे होगी?

हम सभी जानते हैं कि हमारे देश में छोटे गांव और कस्बों में आज भी गोबर और उससे बने उत्पाद दैनिक जीवन और व्यापार का अभिन्न अंग हैं, लेकिन यह समूची प्रक्रिया स्थानीय स्तर पर असंगठित ढ़ंग से पूरी होती है। यदि इसे संगठित रूप दिया जाए और योजनाबद्ध तरीके से काम किया जाए तो यह आपूर्ति संभव है, इसके द्वारा कई इलाकों में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन में भी मदद मिलेगी। दूसरी ओर उत्तरप्रदेश समेत कई राज्यों की नीति में पशुधन को बढ़ावा देना सम्मिलित है, जिससे इस आपूर्ति के पूर्ण होने की संभावना को बल मिलता है।

गैस आधारित शवदाह

इसी संस्था ने गैस आधारित शवदाह का विकल्प भी जनसामान्य को मुहैया करवाया है। जिसमें लकड़ी की कोई आवश्यकता नहीं होती। वन संरक्षण के नजरिए से देखा जाए तो यह पर्यावरण हितैषी विकल्प प्रतीत होता है। बीते दिनों नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने भी सभी राज्यों के लिए एक निर्देशिका जारी करते हुए अंतिम संस्कार के इको–फ्रेंडली तरीकों को आजमाने पर बल देते हुए, राज्यों को इस दिशा में प्रयास बढ़ाने के लिए कहा था।

विद्युत आधारित शवदाह

ग्रीन रिवॉल्यूशन फाउंडेशन ने विद्युत शवदाह की दिशा में भी नई तकनीकों के प्रयोग से इसके संचालन की जटिलताओं को दूर किया है। पूर्व में विद्युत शवदाह के लिए जो संयंत्र स्थापित किये गए थे, उनके संचालन के लिए 100 किलोवॉट विद्युत ऊर्जा सतत प्रदान करनी होती थी। यही कारण था कि उनके संचालन की लागत बहुत अधिक आती थी। नए विकसित संयंत्र को सिर्फ 80 किलोवॉट विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता होती है, यह ऊर्जा भी चौबीस घंटे सतत प्रदान नहीं करनी होती। इसकी प्री–हिटिंग (शवदाह से पूर्व संयंत्र को गर्म करना) में भी कम समय लगता है। लिहाजा इसके संचालन की लागत भी कम आती है। पूर्व में जिन कारणों के लिए विद्युत शवदाह का विकल्प जनसामान्य और कई स्थानों

परंपरा वही, तरीका नया

इस विकल्प में परंपरागत रूप से लकड़ियों की चिता पर ही अंतिम संस्कार किया जाता है। कपाल क्रिया समेत अंतिम संस्कार की सभी रस्में पूरी होने के बाद स्वचलित पद्धति से देह चिता से संलग्न छोटे से कमरेनुमा चेंबर में चली जाती है, दरअसल शव स्टेनलेस स्टील की बनी शैय्या पर लेटाया जाता है। धार्मिक रस्में पूरी होने के बाद देह शैय्या समेत बंद चेंबर में पहुंचती है, जहां दहन पूर्ण होता है। बंद कक्ष में विभिन्न फिल्टर लगे होते हैं और ब्लोअर पाईप्स से बंद कक्ष में वायु का प्रवाह करवाया जाता है। दूसरी ओर दहन के दौरान निकला हुआ धुंआ और राख के सूक्ष्मकण फिल्टर्स में उपचारित होने के बाद वायुमंडल में छोड़े जाते हैं, जिससे धुएं में शामिल हानिकारक गैसें और सूक्ष्म कण वायुमंडल तक नहीं पहुंचते। इस विधि से दाहसंस्कार पूर्ण करने में मात्र 80 से 100 किलो लकडी की आवश्यकता होती है जबकि आमतौर पर लकड़ी की पारंपरिक चिता पर 300 से 400 किलो लकडियों की आवश्यकता होती है। इस तरह देखा जाए तो परंपरागत तरीके में मामूली से परिवर्तनों को स्वीकार कर हम पारंपरिक अंतिम संस्कार से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव को बहुत हद तक कम कर सकते हैं। इस विधि से दाहसंस्कार के बाद परिजन परंपरानुसार भस्म और अस्थि संचय कर सकते हैं।

चित्र 1: कटी हुई लकड़ी जैसी दिखने वाले गाय के गोबर से बने लट्ठे

चित्र 2: उन्नत लकड़ी आधारित दाह संस्कार सभी अनुष्ठानों को करने के प्रावधान और नियंत्रित उत्सर्जन के साथ जो प्रति दाह संस्कार में दो पेड़ों की लकड़ी बचाने के बराबर बचत कर सकता है।

पर जिला और नगर प्रशासन के बीच लोकप्रिय नहीं हो सका था, नए संयंत्र में उन सभी कमियों को दूर किया गया है। लिहाजा उम्मीद है कि इस बार इस विकल्प को पहले से अधिक जनस्वीकृति मिलेगी।

बायोमास आधारित अंतिम संस्कार

टाटा एनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट (टेरी) और अन्य संस्थाएं बायोमास गैसीफायर आधार तंत्र विकसित करने में लगी हैं। जिसमें चिप्सनुमा लकडियों की सहायता से दहन की प्रक्रिया पूरी होगी। इस विधि में लकड़ी की खपत परंपरागत विधि की तुलना में आधी हो जाएगी और दहन की प्रक्रिया एक से डेढ़ घंटे की अवधि में पूरी होगी। बाद में परिजनों को अस्थि और भस्म संचयन की सुविधा भी मिलेगी। इसी तरह गुजरात की एक संस्था सौर ऊर्जा से अंतिम संस्कार का सिस्टम विकसित करने के लिए प्रयासरत है। पुणे के एक मुक्तिधाम में सीएनजी से अंतिम संस्कार की सुविधा प्रारंभ की गई है।

और भी रास्ते हैं

अंतिम संस्कार जैसे अति संवेदनशील विषय पर कोई भी टिप्पणी करना आसान नहीं है। दाह संस्कार की परंपरा का पांच हजार वर्ष पुराना इतिहास है। ऐसी परंपरा को आसानी से परिवर्तित नहीं किया जा सकता लेकिन इस परंपरा में आधुनिक समय के अनुसार कुछ सूक्ष्म और प्रासंगिक बदलाव किये जा सकते हैं, जिससे कि विधान का मूल स्वरूप प्रभावित ना हो। ऐसे कई विकल्प ऊपर सुझाए गए हैं। इसके अलावा मुक्तिधाम के इर्द–गिर्द स्मृति वन, अर्बन फॉरेस्ट जैसी संकल्पनाओं का क्रियान्वयन करके भी हम परंपरा के निर्वहन और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन कायम कर सकते हैं।

अस्थि विसर्जन और नदियां

अंतयेष्टि के तीसरे दिन चिता की भस्म और भस्म में सामहित अस्थियों को पवित्र नदियों में विसर्जित किया जाता है। भस्म और अस्थि विसर्जन से नदियों में किसी भी किस्म का प्रदूषण नहीं फैलता। हमारी अस्थियां मूलतः कैल्शियम फॉस्फेट की बनी होती है। अस्थि विसर्जन के बाद इन तत्वों का प्रकृति में पुनर्मिलन हो जाता है। इस तरह सृजन से विसर्जन तक का मनुष्य जीवन का चक्र पूर्ण होता है। विसर्जन से प्राप्त खनिज लवण नदी तंत्र में पोषक तत्वों के रूप में धीरे–धीरे मिल जाते हैं और जलीय जीवन चक्र का हिस्सा बन जाते हैं।

आज से अनंत तक...

हिंदू धर्म में नदियों का बहुत महत्व हैं और आदि काल से आधुनिक काल तक धर्म की यात्रा भी नदी के प्रवाह की तरह सतत जारी है। समय और परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार हिंदू धर्म का पालन कर रहे वृहद समुदाय ने मूल धार्मिक निर्देशों का पालन करते हुए अपने दैनिक जीवन में कई छोटे–छोटे परिवर्तनों को अंगीकार किया है। कहा भी जाता है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। मृत्यु के बाद होने वाले कर्मकांड भी परिवर्तन से अछूते नहीं रहे हैं। यदि इन क्रियाओं में परिवर्तनों का विश्लेषण करे तो पाएंगे कि पूर्व में यह क्रियाकलाप सिर्फ पुत्र या पौत्र द्वारा सम्पन्न किये जाते थे आज बेटियां भी आवश्यकता और स्थिति के अनुरूप परिजनों का अंतिम संस्कार कर रही हैं।

कई लोग परोपकार के मार्ग पर चलते हुए जीवित अवस्था में ही यह संकल्प ले लेते हैं कि मृत्यु के बाद उनके अंगदान किये जाएं और उनका परिवार भी मृत्यु के बाद मृतक की इस इच्छा को पूर्ण करने में सहयोग करता है। कई लोग तो अपनी संपूर्ण देह मेडिकल कॉलेज को दान दे देते हैं ताकि चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई

चित्र 3: सभी अनुष्ठानों को करने के प्रावधान के साथ उन्नत दाह संस्कार और वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत का उपयोग करके उत्सर्जन को नियंत्रित करना (बिजली या एलपीजी/सीएनजी)।
सभी तस्वीरें ग्रीन रेवलूशन फाउंडेशन, नई दिल्ली के सौजन्य से

कर रहे छात्रों को पढ़ाई में मदद मिल सके। इन स्थितियों में भी दाहसंस्कार की परंपराओं के निर्वहन में समझौते करने पड़ते हैं।

जब समाज इन परिवर्तनों को स्वीकार कर सकता है तो हमें उम्मीद है कि प्रज्ञाम्बु के इस अंक में वर्णित विकल्पों पर भी समाजजन गौर करेंगे और अपने वन, नदी और पर्यावरण की खातिर इन विकल्पों को अपनाएंगे। जब हम अपनी जीवनशैली में इस तरह के छोटे–छोटे परिवर्तन स्वीकार करेंगे तभी हमारी नदियां आज और अनंत तक निर्बाध बहती रहेंगी।

संपर्क
गंगा नदी घाटी प्रबंधन एवं अध्ययन केंद्र (cGanga)
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर 208016, उत्तर प्रदेश, भारत
Email: info@cganga.org, Website: www.cganga.org, Contact us: +91 512 259 7792
©cGanga, 2023